दैनिक जागरण

Date: 27-07-19

संघ लोक सेवा आयोग की हिन्दी

आज हर कोई 'सर्जिकल स्ट्राइक' शब्द से परिचित है, पर सिविल सेवा के प्रश्न पत्र में इसे 'शल्यक प्रहार' लिखा जा रहा है

डॉ. विजय अग्रवाल , (लेखक पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं)

कृपया इस वाक्य को ध्यान से पढ़ें-भारत में संविधान के संदर्भ में, सामान्य विधियों में अंतर्विस्ट प्रतिषेध अथवा निंबधन अथवा उपबंध, अनुच्छेद 142 के अधीन सांविधानिक शक्तियों पर प्रतिरोध अथवा निंबधन की तरह कार्य नहीं कर सकते। ये दो वाक्य भी देखें: पहला- 'वार्महोल' से होते हुए अंतरा-मंदाकिनीय अंतरिक्ष यात्र की संभावना की पुष्टि हुई। दूसरा-यूएनसीएसी अब तक का सबसे पहला विधित: बाध्यकारी सार्वभौम भ्रष्टाचार विरोधी लिखत है। क्या आप इन वाक्यों को समझ सके ? ये हैं क्या ? ये सिविल सेवा की प्रारंभिक परीक्षा 2019 में पूछे गए प्रश्नों की हिन्दी भाषा के कुछ नमूने हैं। मूल प्रश्न पत्र अंग्रेजी में तैयार होता है और उसी प्रश्न के नीचे उसका हिन्दी अनुवाद दिया जाता है यानी यह 'अनुदित हिन्दी' है।

अब मैं आता हूं मूल समस्या पर। आइएएस बनने के लिए आपको 200 अंकों वाले सौ प्रश्नों के सामान्य अध्ययन के पेपर में सामान्यतया 100 अंक लाने ही होते हैं। परीक्षा में कुल लगभग 5-6 लाख युवा बैठते हैं, जिनमें से 10-12 हजार का चयन होना होता है। इन आंकड़ों से आप इस तथ्य का अनुमान तो लगा ही सकते हैं कि 0.01 अंक का भी कितना अधिक महत्व होता होगा। दूसरी बात यह कि परीक्षार्थी को 120 मिनट में 100 प्रश्न हल करने होते हैं। यदि उसका उत्तर गलत हुआ तो दंड के बतौर उसके नंबर काट लिए जाते हैं यानी यहां उसके सामने चुनौती यह भी है कि वह प्रश्नों को तेजी से समझे और सही-सही समझे। नहीं तो लेने की जगह देने पड़ जाएंगे। इस पृष्ठभूमि में आप हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा के माध्यम वाले परीक्षार्थियों की समस्या और उनके सामने प्रस्तुत उस भयावह संकट पर पूरी संवेदनशीलता के साथ विचार करें, जो 'अनुदित हिन्दी' ने खड़ा कर दिया है। सौ प्रश्नों में से प्रतिवर्ष औसतन आठ-दस प्रश्न ऐसे होते ही हैं, जो इस तरह की अबूझ, क्लिष्ट एवं अव्यावहारिक हिन्दी से सुसज्जित होते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्हीं प्रश्नों को अंग्रेजी में आसानी से समझा जाता है। ऐसी हिन्दी के कारण परिणाम यह हो रहा है कि 2011 से पहले तक प्रारंभिक परीक्षा में हिन्दी माध्यम से सफल होने वाले प्रतियोगियों का प्रतिशत जहां 40 से भी अधिक था, वहीं अब गिरकर 10-12 प्रतिशत के आसपास आ गया है। स्वाभाविक है कि जब प्रारंभिक परीक्षा में ही हिन्दी वाले बाहर हो गए हैं तो अंतिम चयन सूची में उनकी उपस्थिति अपने-आप दाल में नमक की तरह रह जाएगी। कुछ बुद्धिजीवियों और नीति-निर्माता प्रशासकों द्वारा इसे हिन्दी वालों की अयोग्यता-अक्षमता का प्रमाण घोषित कर दिया जाता है।

यह भाषाई अन्याय केवल हिन्दी वालों के साथ ही नहीं, बल्कि उन सभी भारतीय भाषाओं के युवाओं के साथ भी हो रहा है, जो स्वयं को माध्यम के रूप में अंग्रेजी लेने की स्थिति में नहीं पाते। सिविल सेवा परीक्षा के प्रश्न पत्र केवल दो ही भाषाओं में छपते हैं-अंग्रेजी और हिन्दी में। स्पष्ट है कि प्रश्नों को समझने के लिए गैर हिन्दी भाषी भी हिन्दी भाषा का

ही सहारा लेते हैं। यदि उन्हें अंग्रेजी आ रही होती तो वे उसे ही अपना माध्यम बना लेते। साफ है कि बड़ी चालाकी से उन्हें भी प्रारंभिक स्तर पर ही बाहर कर दिया जा रहा है। जहां तक मुख्य परीक्षा की हिन्दी का प्रश्न है, उसमें स्थिति उतनी बुरी नहीं है, फिर भी ऐसे कई शब्दों की भरमार देखने को मिलती है, जिनसे हिन्दी भाषियों की भेंट नहीं होती है। आज आम आदमी 'सर्जिकल स्ट्राइक' शब्द से परिचित हो चुका है, लेकिन सिविल सेवा का पेपर इसे 'शल्यक प्रहार' लिखता है। अंकीयकृत प्रजनक, विधीयन, प्रोत्कर्ष, प्रमात्र, प्रवसन जैसे अनेक ऐसे शब्दों को चुन-चुनकर लाया जाता है, जो समझ से परे हों।

हिन्दी में 'डिजिटलीकरण'के लिए पता नहीं क्यों संघ लोक सेवा आयोग को 'अंकीयकृत' शब्द अधिक अच्छा लगता है। यूपीएससी का अनुवादक अंग्रेजी के एक ही शब्द के लिए अलग-अलग जगहों पर हिन्दी के अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे 'मैनडेटरी' के लिए कहीं अनिवार्य, कहीं अधिदेशित तो कहीं आज्ञापरख। यदि आप 'साइंटिस्ट ऑबजर्ब्ड' को हिन्दी में 'वैज्ञानिकों ने प्रेक्षण किया' लिखेंगे तो थोड़ी देर के लिए हिन्दी वाला सहमेगा ही। साफ है कि संघ लोक सेवा आयोग हिन्दी में अनुवाद को लेकर बहुत ही उपेक्षापूर्ण रुख धारण किए हुए है। उसमें न तो हिन्दी भाषा के प्रति कोई दायित्वबोध दिखाई दे रहा है और न ही संवेदनशीलता, बल्कि उसकी इस भाषाई गतिविधि ने जाने-अनजाने हिन्दी वाले के लिए इस परीक्षा को दुरूह बना दिया है। इस बात को लेकर गैर अंग्रेजीभाषियों में न केवल खदबदाहट है, बल्कि आक्रोश भी है। इस अन्याय को जल्दी से जल्दी दूर किए जाने की सख्त आवश्यकता है। यह कोई नीतिगत मामला नहीं है।

दैनिक भास्कर

Date: 27-07-19

क्या अधिक महिला सांसद औरतों के हक की गारंटी है ?

संपादकीय

लोकसभा ने तीसरी बार मुस्लिम महिलाओं के लिए तैयार ट्रिपल तलाक बिल को पास कर दिया। पहले भी दो बार यह बिल लोकसभा में पास हो चुका है, लेकिन राज्यसभा में रुक गया। इस बिल में तलाक-तलाक-तलाक कहकर या लिखकर तलाक देने वाले मुस्लिम पुरुषों को तीन साल की सजा का प्रावधान है। सुप्रीम कोर्ट पहले भी बोलकर तलाक लेने की इस प्रक्रिया को गैरकानूनी करार दे चुका है। पाकिस्तान, ईरान, इराक, सीरिया, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, बांग्लादेश जैसे 22 इस्लामी देश ट्रिपल तलाक को गैरकानूनी करार दे चुके हैं। वैसे तो मौलाना और उलेमा भारत में भी इस सामाजिक कुरीति को खत्म करने का भरोसा दिलवा चुके हैं, लेकिन कोशिशें सफल नहीं हुईं। पिछले 2-3 सालों में ट्रिपल तलाक के 574 केस सामने आए हैं। इस मसले पर दो दिन पहले संसद में जमकर बहस हुई। महिलाओं के हक से जुड़े इस मुद्दे पर इस बार बहस इसलिए भी अहम थी, क्योंकि नई संसद में सबसे ज्यादा महिलाएं पहुंची हैं। लेकिन क्या ज्यादा महिला सांसद होना औरतों को ज्यादा हक और सुरक्षा की गारंटी हो सकती हैं? क्या संसद में बोलती, बहस करती महिला सांसद घरों और सड़कों पर महिलाओं को सुरक्षा का भरोसा दे सकती हैं? संसद में मौजूद 78 महिला सांसद क्या देशभर की करोड़ों महिलाओं को अन्याय से निजात दिला पाएंगी? क्या ट्रिपल तलाक या दुष्कर्मी को सजा जैसे कानूनों के

माध्यम से वे सचमुच न्याय दिलाने में कारगर भूमिका निभाएंगी? या सिर्फ अपनी बात रखने का मौका ही उन्हें अपने प्रतिनिधित्व के लिए काफी लगता है? फिर ज्यादा महिलाएं होने की जो वकालत होती रही है उसके सकारात्मक असर की ही आस क्यों लगाई जा रही है? ज्यादा महिलाओं को लाना औपचारिकता भी तो हो सकता है। क्या ये राजनेत्रियां अपनी 'सॉफ्ट इमेज' से बाहर पुरुषों की राजनीति में अपना अस्तित्व बचा पाएंगी या सिर्फ टिकट बचाकर चुप रह जाएंगी? वादे सिर्फ ट्रिपल तलाक बिल के कानून बन जाने से पूरे नहीं होंगे। क्यों न उनके होने से देश की बेटियों को ज्यादा पढ़ने के मौके मिलें, जिससे चंद्रयान में जुटीं महिला वैज्ञानिकों का जिक्र खुशी तो दे पर आश्चर्य नहीं। सवाल तो यह है कि क्या सचमुच लोकतंत्र में महिला या पुरुष ज्यादा-कम होने से फर्क पड़ना चाहिए? वरना कोख, घर और ससुराल में सुरक्षा के लिए कौन-सा महिलाओं का सांसद होना जरूरी है।

THE ECONOMIC TIMES

Date: 27-07-19

Sound Move to Curb Road Fatalities

Rajya Sabha should pass needed legal changes

ET Editorials

In 2015, 1.3 million people were killed worldwide in road accidents, of this, 1,46,133 persons were killed in India, and, besides, 5,00,279 were injured. Between 2005 and 2015, the country's road network grew by 44%, the number of registered motor vehicles grew by 123%, and the number of road accident fatalities grew by 54%. Despite the high toll, lawmakers have been dragging their feet on passing the amendments to the Motor Vehicles Act that focus on concrete measures to improve road safety to tackle this human-made epidemic. Last week, the Lok Sabha passed the amendment Bill for the second time in as many years. Unlike the last time, the Rajya Sabha must not delay the legislation and ensure its passage in the current session of Parliament. It would save, and protect from maiming, many lives.

India has committed to the international goal of halving death and injuries from road accidents by 2020. The amendments, which cover the gamut of behavioural change, regulatory framework and improved assistance for accident victims are a step towards realising this goal. The Bill has instituted penalties for poor road design, construction and maintenance, stiffer penalties for traffic violations, increased use of technology for monitoring and enforcement, compulsory insurance, cashless system for treatment of road accident victims in the crucial golden hour, and Good Samaritan guidelines give legal backing to protection from civil and criminal liability to those who come to the aid of road accident victims. To address the issue of corruption, the Bill proposes use of modern technology for electronic monitoring and enforcement of road safety. This will require significant investment and the central government has to provide funds and technical support to the states. The proposed Road Safety Board to advise the Centre and the states is a good idea, but the board needs authority and autonomy as well.

Ensuring road safety and improved mobility should be an issue on which political parties across the spectrum can come together. The Rajya Sabha needs to look beyond partisan considerations and pass the Bill.

Date: 27-07-19

At Last, Some Sense on Managing Water

ET Editorials

It is most welcome that the Centre has reportedly endorsed the idea of levying a conservation fee for groundwater usage nationwide on residential complexes, industries and agriculture. Reasonable nominal fees can add-up and provide much-needed resources for rainwater harvesting, aquifer recharge and storage. Intensive use of groundwater has produced a crisis of sustainability, most districts facing fast-falling water tables and rising water stress.

Particularly noteworthy is the proposal to bring agriculturalists with more than 3-5 hectares of land, or nearly 10% of our 14.5 crore farmers, under the purview of groundwater regulation. We need participatory and transparent management of our groundwater resources by the stakeholders concerned. That calls for strong partnership arrangements among government agencies, research institutes, local self-government bodies, industrial units and civil society organisations, with the local community duly empowered and involved. Groundwater meets nearly two-thirds of our irrigation needs and rising, even as water tables keep falling. In the last 40 years, about 84% of total addition to irrigation has come from groundwater, which clearly needs reversing. And fast.

In tandem, subsidy on power, fertiliser and procurement has further distorted and artificially shored up demand for groundwater at our peril. Instead of water-guzzling crops like sugarcane and paddy in areas that do not suit these crops, farmers need to be incentivised to shift to crops suited for their agroclimatic conditions — millets and soya, for example. We need to boost resources for canal maintenance as well. Annual water audits for industry to rev up usage efficiency brook no delay. Political will must be summoned to manage water.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 26-07-19

Free Rein To Power

NIA amendment bill infringes upon state authority, must be reconsidered

Kunal Ambasta, [The writer is assistant professor, National Law School of India University, Bangalore.]

The Bill to amend the National Investigation Agency (NIA) Act, 2008, has been passed by both Houses of Parliament and awaits the Presidential assent and notification prior to becoming law. It seeks to widen the authority of the NIA in terms of the crimes that it can investigate irrespective of the place of

occurrence of the crime. The NIA was created as a special investigative agency under the control of the Union government which was meant to investigate crimes which affect the national security of the country, and those against institutions that were under national, as opposed to state government, control. Terror offences, offences against atomic and nuclear facilities, and offences such as waging war against the country, amongst others, were included in this list of offences. Though this may appear to be a technical point, it was clear that the agency was created to investigate crimes against the country, as opposed to ordinary criminal offences.

The reason for restricting the scope of the NIA to a category of offences as previously stated is simple. Under the Constitution, the maintenance of public order and police forces are matters upon which state governments, and not the Union, may legislate. Criminal law and procedure are matters, which may be legislated upon by both the Union as well as state governments. However, as far as ordinary criminal investigations and prosecutions are concerned, it is clear that the state governments have the authority to prosecute such crimes. Not every criminal offence is a threat to national security and sovereignty and consequently, states have the competence to deal with the same.

However, with the recent amendment to the NIA Act, the Central government gets the authority to have the NIA take over the investigation of crimes, which involve allegations of human trafficking, offences under the Explosives Act, and certain offences under the Arms Act. The rationale for effectively allowing the Union government to prosecute such offences is unclear. Not all offences related to explosives may be a threat to national security, nor does an offence under the Arms Act automatically become related to terror activity. A state government would be well within its right to prosecute such offences alone. Further, even under the unamended NIA Act, if offences related to the above-mentioned legislation were committed in connection to a terror offence, the NIA would have had the authority to prosecute them.

On the face of it, it appears that the Union government has encroached upon the rights of the states to conduct investigations into a class of cases which may affect public order, but may not have implications nationally. This goes against the notion of Indian federalism which guarantees states autonomy within a national framework. It further renders the state police forces redundant and centralises even ordinary prosecutions with the Union government.

One cannot forget that the NIA is effectively under the control of the Union government and its recent prosecution of certain cases has been questioned due to allegations of bias. The amendment to the NIA Act also gives the agency authority to investigate crimes committed by persons which are against Indian citizens or "affecting the interest of India". This term is undefined and is a recipe for misuse by governments which may conflate critical voices and dissent with adversely affecting India's interests. Further, the laws under which the NIA has the authority to investigate themselves do not mention "affecting the interest of India" as an offence. What we are seeing is the creation of a substantively new (and vague) offence under the guise of giving more procedural powers to an agency under the control of the Union government.

Therefore, the NIA Amendment Bill, 2019 is neither sound on the principles of Indian federalism nor on the established principles of criminal law. It deserves reconsideration.

राष्ट्रीय सहारा

Date: 26-07-19

आतंकवाद पर प्रहार

संपादकीय

गैर कानूनी गतिविधि (रोकथाम) **अधिनियम में लोक सभा द्वारा किया गया संशोधन काफी महत्त्वपूर्ण है और पिछले अनुभवों को देखते हुए आवश्यक भी था। आतंकवाद से अगर प्रभावी और सफल लड़ाई लड़नी है तो कानून के सारे खांचों को भरना आवश्यक है। अनुभव के अनुसार इसमें** कई कमियां नजर आई। मसलन, **इसमें आतंकवादी संगठनों को** प्रतिबंधित करने का प्रावधान तो है, **पर आतंकवादियों को नहीं। आप एक संगठन को प्रतिबंधित करते हैं तो वह दूसरे नाम से संगठन बना लेता है। दूसरे को प्रतिबंधित करते हैं तो तीसरा बना लेता है। इसमें आतंकवादी कई बार** कानूनी **शिकंजे से बच जाते हैं। इस विधेयक में आतंकवादियों को प्रतिबंधित करने का प्रावधान है। गृहमंत्री अमित शाह के उदाहरण से स्पष्ट है कि यह कितना जरूरी था। इंडियन मुजाहिदीन का आतंकवादी यासीन भटकल भारत में आतंकवाद** फैलाता रहा, वह पकड़ा गया और आराम से छूट भी गया। कारण, **वह आतंकवादी घोषित होकर प्रतिबंधित नहीं था। यदि वह प्रतिबंधित होता तो अनेक आतंकवादी घटनाओं से देश बच जाता। नये प्रावधानों के अनुसार आतंकवादी गतिविधियों** को अंजाम देने वाले, **आतंकवादियों को तैयारी में मदद करने वाले, उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने** वाले और साहित्य **एवं वैचारिक प्रचार के जरिए आतंकवाद के सिद्धांत का प्रचार करने वालों को आतंकवादी घोषित किया जाएगा। यह विश्व स्तर के नियमों के अनुकूल है। यह सच है कि केवल बंदूक चलाने वाला ही आतंकवादी नहीं होता। उसकी किसी तरह से मदद या समर्थन करने वाले भी आतंकवादी ही हैं।** हां, इसका दुरु पयोग नहीं हो, इसका ध्यान रखा जाना **चाहिए। कई बार निदरेष भी आशंका में दायरे में आकर उत्पीड़न के शिकार होते हैं। हालांकि इसमें दुरु पयोग रोकने के पूर्वोपाय किए गए हैं। गृहमंत्री ने आास्त भी किया और कुछ उदाहरण भी दिए। आतंकवाद के विरु द्ध लड़ाई एवं हर तरह के कदमों में पूरे देश को साथ खड़ा होना चाहिए। किंतु लोक सभा में ऐसा नहीं होना दुर्भाग्यपूर्ण है। कांग्रेस ने पहले आशंकाएं उठाई और अंत में स्थायी समिति और संयुक्त प्रवर समिति के पास भेजने की मांग कर बहिर्गमन कर दिया।** हालांकि सरकार को **कई विपक्षी दलों का साथ मिला। बावजूद आतंकवाद के खिलाफ सख्ती और शून्य सहिष्णुता की नीति में अंतर नहीं होना चाहिए। इस विधेयक का पारित होना इसका सबूत है।**

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 26-07-19

आतंक के खिलाफ

संपादकीय

आतंकवाद किसी भी समाज और देश के सामने बड़ी और काफी कड़ी चुनौतियां पेश करता है। इससे टकराने और मात देने के लिए सिर्फ मुस्तैदी ही काफी नहीं होती, बल्कि कई तरह की सोच और स्थापनाएं भी बदलनी होती हैं। अचानक ही हम ऐसी जगह खड़े हो जाते हैं, जहां पहुंचकर लगता है कि इससे निपटने के लिए हमारे मौजूदा कानून और तौर-तरीके पर्याप्त नहीं हैं। नए अनुभवों से सबक लेते हुए इन्हें लगातार बदलना पड़ता है। बदलाव का यह दबाव इसलिए भी होता है कि आतंकवादी संगठन तौर-तरीकों और कानूनी खामियों का फायदा उठाने के तरीके सीख चुके होते हैं। यही पूरी दुनिया में हुआ है और यही भारत में भी हो रहा है। लोकसभा द्वारा पास किए गए विधि विरुद्ध क्रिया-कलाप निवारण संशोधन विधेयक यानी यूएपीए को हमें इसी संदर्भ में देखना होगा। इसी के साथ ही राष्ट्रीय खुफिया एजेंसी अधिनियम में भी संशोधन हुआ है। ये दोनों ही चीजें एक-दूसरे से जुड़ी हुई भी हैं। यूएपीए का संशोधन आतंकवाद के मामले में राष्ट्रीय खुफिया एजेंसी यानी एनआईए के अधिकारों को विस्तार देता है। राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मसलों पर कानून पास करना कभी आसान नहीं होता, क्योंकि ऐसे कानून कई नए विवाद पैदा कर देते हैं और कुछ पुराने विवादों को खड़ा कर देते हैं। यही इस बार भी हुआ। संशोधन विधेयक के खिलाफ मत तो कम ही पड़े, लेकिन विपक्ष का एक हिस्सा मतदान के समय सदन से बर्हिगमन कर गया।

इसी 8 जुलाई को सदन में पेश हुआ यह संशोधन विधेयक अगर कानून बनता है, तो किसी भी संगठन या व्यक्ति को उसकी गतिविधियों के आधार पर आतंकवादी घोषित किया जा सकेगा। यह अभी तक की उस सोच के खिलाफ है, जो यह मानती है कि जब तक किसी पर आरोप साबित न हो जाए, उसे दोषी नहीं माना जा सकता, चाहे यह आरोप आतंकवाद से संबंधित ही क्यों न हो। एक दूसरी आपत्ति यह है कि इस संशोधन के बाद एनआईए बिना किसी राज्य सरकार या स्थानीय पुलिस की अनुमति के, यहां तक कि उन्हें सूचना दिए बगैर किसी भी राज्य में जाकर जांच कर सकती है और छापा भी मार सकती है। कहा जा रहा है कि इससे राज्य सरकारों के अधिकारों का हनन होता है और इसलिए यह भारतीय संघ की अवधारणा के विरुद्ध है। तकनीकी रूप से इन तर्कों में दम हो सकता है, लेकिन आतंकवाद का जो रूप आज हमारे सामने है, उनमें किसी भी एजेंसी के लिए अनुमति लेने और सूचना देने जैसी चीजों में समय गंवाना काफी महंगा भी साबित हो सकता है। आतंकवाद के लिए बनी एजेंसी को ऐसी औपचारिकताओं में फंसाना बुद्धिमानी नहीं होगी।

लोकसभा में इसके दुरुपयोग की आशंकाओं का जो मुद्दा उठाया गया, उसे पूरी तरह दरकिनार नहीं किया जा सकता। गृह मंत्री अमित शाह का यह तर्क महत्वपूर्ण है कि सरकार संशोधन इसलिए नहीं कर रही कि कानून का दुरुपयोग हो, इसलिए कर रही है कि आतंकवाद पर नकेल कसी जा सके। दुरुपयोग की आशंकाएं लगभग हर कानून को लेकर उठती हैं, जो पूरी तरह बेबुनियाद भी नहीं होतीं। दुरुपयोग भी हमारी व्यवस्था का ही एक सच है। एक बड़ी जरूरत कानूनों के दुरुपयोग को रोकने की है, लेकिन सिर्फ इसी वजह से आतंकवाद जैसे मसले पर कानूनी बदलाव को रोकना कहीं से भी उचित नहीं।